National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(68): 137-142
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ० मीनाक्षी कोठारी
विभागाध्यक्ष,
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग,
द यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ वेस्ट हिमालयाज,
देहरादून,(उत्तराखण्ड) भारत।

डॉ० गिरीश पाठक
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग,
डी. डी. कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)
भारत।

Correspondence:
डॉ० मीनाक्षी कोठारी
विभागाध्यक्ष,
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग,
द यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ वेस्ट हिमालयाज,
देहरादून,(उत्तराखण्ड) भारत।

पित्तज विकारों में यौगिक षट्कर्म (वारिसार धौति या शंख प्रक्षालन) एवं आयुर्वेदिक पंचकर्म (विरेचन कर्म) की भूमिका

डॉ० मीनाक्षी कोठारी, डॉ० गिरीश पाठक

शोध सारांश

आधुनिक समय में योग स्वास्थ्य के लिए जितना लाभप्रद है; उतना ही यौगिक क्रियाओं को करने से पूर्व शारीरिक एवं मानसिक रूप से शुद्धिकरण भी आवश्यक है। जिसके लिए शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों अथवा दोषों को बाहर निकालने के लिए योग की प्रथम अवस्था हठ यौगिक ग्रन्थों में वर्णित यौगिक षट्कर्म क्रिया है।

इन षट्कर्मों के अभ्यास से शरीर की शुद्धि होती है। बिना शुद्धि के शरीर योग के उच्च अभ्यासों के लिए तैयार भी नहीं हो पायेगा। शुद्धि के पश्चात् मनुष्य दीर्घायु हो जाते हैं। षट्कर्म शारीरिक एवं मानसिक रूप से शरीर से दोषों का निर्हरण करते हैं तथा त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) को साम्यावस्था में लाने का भी कार्य करते हैं। षट्कर्म अर्थात् **'छः कर्म'** हठयोग में बतायी गयी छः क्रियाऐं हैं।

उसी प्रकार आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ **'जीवन का विज्ञान'** है। आयुर्वेद स्वास्थ्य की एक ऐसी सम्पूर्ण प्रणाली है, जिसका प्राचीन काल से ही पालन किया जा रहा है। आयुर्वेद की अवधारणा है कि उपचार का मार्ग शरीर और मस्तिष्क में सन्तुलन स्थापित करता है और आयुर्वेदिक उपचार में व्यक्ति की जीवन-शैली तथा आहार-विहार की आदतों को बदलने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है; साथ ही साथ दोषों में सन्तुलन स्थापित करने के लिए शमन (शान्ति) या शोधन चिकित्सा (शुद्धिकरण) की जाती है। आयुर्वेद के प्राचीन ऋषि आचार्य सुश्रुत ने स्वस्थ व्यक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[1]

अर्थात् जिसके सभी दोष सम मात्रा में हों, अग्नियाँ सम हो, धातु, मल और उनकी क्रियाएँ भी सम (उचित रूप में) हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों, उसे ही स्वस्थ व्यक्ति समझना चाहिए।

पंचकर्म, आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित एक विशेष चिकित्सा पद्धति है; जो दोषों को शरीर से बाहर निकाल कर रोगों को जड़ से समाप्त करती है। यह शरीर शोधन की प्रक्रिया है, जो स्वस्थ मनुष्य के लिए भी लाभदायक है।

महर्षि चरक द्वारा चरक संहिता में आयुर्वेदिक पंचकर्म पद्धति का प्रयोजन बताते हुए कहा गया है-

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम, आतुरश्य विकार प्रशमनं च।

आचार्य चरक के अनुसार, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं आतुर (रोगी) के विकारों (रोग) का पूर्णतः समन (नाश) करना ही पंचकर्म चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य है।

पंचकर्म अर्थात पाँच कर्म, आयुर्वेद की उत्कृष्ट चिकित्सा विधि है। पंचकर्म को आयुर्वेद की विशिष्ट चिकित्सा पद्धति कहा जाता है। इस विधि से शरीर में होने वाले रोगों और उनके कारणों को दूर करने के लिये तथा तीनों दोषों (त्रिदोष) वात, पित्त, कफ के असमरूप को समरूप में पुनः स्थापित करने के लिये विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाऐं प्रयोग मे लाई जाती हैं। इसी परिपेक्ष्य में दोषों को संदर्भित करते हुए कहा गया है कि,

वायुः पित्तं कफशोक्तः शरीरो दोषसंग्रहः।[2]

शारीरिक दोषों के मुख्य कारण वात, पित्त, कफ हैं। शरीर में कोई भी विकार इन तीन दोषों के बिना नहीं हो सकता।[3]

शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्।
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः।।[4]

शरीर को स्वस्थ बनाए रखना शरीर की हर प्रक्रियाओं का एकमात्र लक्ष्य है। इसे पूरा करने के लिए इन सभी क्रियाओं का एक-दूसरे के साथ समन्वय होना चाहिए। यदि एक क्रिया में त्रुटि है, तो यह अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है। और इन शारीरिक क्रियाओं का सही ढंग से कार्य न करना ही व्याधि कहलाती है। इसीलिए पित्त दोष को संदर्भित करते हुए कहा गया है कि,

पित्त - "तप सन्तापे"[5] अर्थात् दहन अथवा उष्ण करना। शरीर में अग्नि कर्म के कर्त्ता को पित्त कहते हैं अर्थात् जो शरीर में ऊष्मा या गर्मी व्याप्त करता है। इसीलिए शरीर में पित्त की कमी या अधिकता मनुष्य को बहुत प्रभावित कर सकती है, जिससे मनुष्य कई रोगों से पीड़ित रह सकता है।

आधुनिक समय की पित्त प्रधान व्याधि की समस्याओं के निदान स्वरूप योग एवं आयुर्वेद में निहित यौगिक षट्कर्म में वारिसार धौति क्रिया (शंखप्रक्षालन) और आयुर्वेद पंचकर्म में विरेचन कर्म चिकित्सा का प्रायोगिक उद्देश्य दूषित हुए पित्त दोष का शुद्धिकरण करके सन्तुलन स्थापित करना एव उर्ध्वमार्ग या गुदामार्ग से शरीर में संचित दूषित मल का निष्कासन करता है। इसलिए इस अध्ययन का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि पित्तज विकार में वारिसार धौति क्रिया एवं विरेचन कर्म की क्या भूमिका है।

कूट शब्द - पित्त दोष, यौगिक षट्कर्म (वारिसार धौति क्रिया या शंख प्रक्षालन), आयुर्वेद पंचकर्म (विरेचन कर्म)।

परिचय:-

दोष - शरीर में पंचमहाभूतों के विकार त्रिदोष, सप्तधातु और मल रूप में होते हैं।

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम।।[6]

दोष (वात, पित्त, कफ), धातु एवं मल ही शरीर के मूल कारण हैं। दोष शब्द से वात, पित्त और कफ का ग्रहण होता है। हानिकारक आहार-विहार के सेवन से अप्रसन्न शरीर को मूल रूप से 'दोष' कहा जाता है। शारीरिक दोषों के मुख्य कारण वात, पित्त, कफ हैं। शरीर में कोई भी विकार इन तीन दोषों के बिना नहीं हो सकता।
शारीरिक दोष तीन प्रकार के हैं - वात, पित्त एवं कफ।

वायुः पित्तं कफशोक्तः शरीरो दोषसंग्रहः।[7]

शारीरिक दोषों के मुख्य कारण वात, पित्त, कफ हैं। शरीर में कोई भी विकार इन तीन दोषों के बिना नहीं हो सकता।[8]

शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्।
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः।।[9]

शरीर को स्वस्थ बनाए रखना शरीर की हर प्रक्रियाओं का एकमात्र लक्ष्य है। इसे पूरा करने के लिए इन सभी क्रियाओं का एक-दूसरे के साथ समन्वय होना चाहिए। यदि एक क्रिया में त्रुटि है, तो यह अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है। और इन शारीरिक क्रियाओं का सही ढंग से कार्य न करना ही व्याधि कहलाती है। आचार्यों ने शारीरिक क्रियाओं में दोषों के महत्व को प्रस्तुत करने के लिए शरीर को 'त्रिस्थूण' अर्थात् तीन स्तम्भों - वात, पित्त और कफ पर निर्भर बताया है।

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः।
तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्यो- र्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः,
अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके।
त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः।।[10]

शरीर की उत्पत्ति वात, पित्त और कफ के कारण होती है। ऐसा माना जाता है कि वात का स्थान नाभि के नीचे स्थित है, पित्त मध्य में (नाभि और हृदय के बीच) और कफ सबसे ऊपर (हृदय के ऊपर) स्थित है। शरीर के वात, पित्त और कफ तीनों के व्यवस्थित रहने से शरीर उसी तरह टिका रहता है जैसे कोई मकान कम से कम तीन स्तम्भों पर खड़ा रह सकता है, इसीलिए शरीर को 'त्रिस्थूण' कहा गया है।

यौगिक षट्कर्म:-

घेरण्ड संहिता के अनुसार -

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।[11]

इस श्लोक में छः प्रकार की शारीरिक शुद्धिकरण क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। जिसमें पहली क्रिया है- 'धौति'। दूसरी क्रिया है- 'वस्ति'। तीसरी क्रिया है- 'नेति', चौथी क्रिया है- 'लौलिकी' (नौलि क्रिया), पांचवी क्रिया है- 'त्राटक' एवं अन्तिम छठी क्रिया है- 'कपालभाति'।

इन षट्कर्मों के प्रयोग से शरीर की शुद्धि होती है तथा दूषित विकारों का नाश भी होता है एवं अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्त भी होती है।

आयुर्वेदिक पंचकर्म:-

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के आठ अंगो में कायचिकित्सा को प्रधानतम माना जाता है और पंचकर्म कायचिकित्सा अर्थात शरीर की चिकित्सा से सम्बन्धित रोगों में साधन के रूप में योग्य समझा जाने वाला उपाय है।

पंचकर्म का अर्थ:- पंचकर्म में दो शब्द हैं- पंच और कर्म, जिसमे पंच का अर्थ है- पाँच और कर्म का अर्थ है- कार्य; अर्थात् किसी भी कर्तव्य को करने की क्रिया को कर्म कहते हैं।

पंचकर्म की परिभाषा:-

वमन रेचनं नस्यम निरुष्चानुवासनम ।
एतानि पंचकर्माणि कथितानी मुनिस्वरैः।।[12]

अर्थात् वमन, विरेचन, नस्य, निरुह (आस्थापन), अनुवासन ये सभी पंचकर्म हैं; जो कि ऋषि मुनियों द्वारा कथित अर्थात कहा गया है।

पंचकर्म चिकित्सा:-

पंचकर्म चिकित्सा को तीन चरणों में बाँटा गया है। ये तीन कर्म पंचकर्म को सफल बनाते हैं।

(1) पूर्वकर्म (2) प्रधान कर्म (3) पश्चात कर्म

(1) पूर्वकर्म:-

संसोधयस्य पाचन-स्नेहन-स्वेदनानि-पूर्वकर्म।[13]

पंचकर्म द्वारा जिस व्यक्ति का शुद्धिकरण या शोधन करना है, उसकी तैयारी के लिए जो कर्म किया जाता है, उसे पूर्वकर्म कहते हैं।

(i) पाचन:- आहार (भोजन) के ठीक पाचन हेतु तथा जठराग्नि को प्रदीप्त (प्रकाशित) करने वाली औषधियों जैसे- हिंग्वाष्टक चूर्ण, चित्रकादी वटी, पंचकोल चूर्ण का उपयोग आहार पाचन हेतु किया जाता है।

(ii) स्नेहन:- इसका प्रयोग बाह्य स्नेहन (अभ्यंग आदि) तथा आभ्यांतर/आंतरिक (स्नेहपान) दोंनो प्रकार से किया जाता है। जिससे दोष अपने-अपने स्थान से अलग हो जाते हैं।

स्नेहन के लिए उपयुक्त स्नेह:- घृत, तैल, वसा, मज्जा, उत्तम है।

(iii) स्वेदन:- जिस क्रिया द्वारा शरीर से स्वेद (पसीना) निकाला जाता है, वह स्वेदन कहलाता है तथा स्नेहन के पश्च्यात जब दोषों की जटिलता कम हो जाती है उन्हें स्वेदन द्वारा पृथक-पृथक कर प्रधान कर्म (वमन, विरेचन, बस्ति) के द्वारा शरीर से बाहर निकाल देते हैं।[14]

(2) प्रधान कर्म:- महर्षि सुश्रुतानुसार, वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य और रक्तमोक्षण या महर्षि चरकानुसार, वमन, विरेचन, निरूह व अनुवासन बस्ति और नस्य प्रधान कर्म हैं।

(3) पश्चात् कर्म[15] **:-** प्रधान कर्म के बाद अग्नि वृद्धि एवं बलवृद्धि हेतु तथा शरीर को प्राकृतिक अवस्था में लाने के लिए किया जाने वाला कार्य पश्चात कर्म कहलाता है। यह मुख्यतः तीन प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है। जैसे - (i) संसर्जन क्रम (ii) रसायन-वाजीकरण चिकित्सा (iii) शमन चिकित्सा।

यौगिक षट्कर्म एवं आयुर्वेदिक पंचकर्म के उद्देश्य:-

षट्कर्म के उद्देश्य -

हठयोग एवं षट्कर्मों का उद्देश्य दो मुख्य प्राण-प्रवाहों (शरीर में जीवनीशक्ति प्रवाहक) इड़ा एवं पिंगला नाड़ी के बीच सामंजस्य स्थापित कर, इनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शुद्धिकरण एवं सन्तुलन प्राप्त करना। षट्कर्मों का प्रयोग शरीर में त्रिदोषों- वात, पित्त और कफ को सन्तुलित करने के लिये भी किया जाता है। आयुर्वेद एवं हठयोग के अनुसार इन त्रिदोषों के बीच असन्तुलन होने से रोग उत्पन्न होता है। शरीर को विषाक्त या दूषित तत्त्वों से मुक्त करने एवं आध्यात्मिक मार्ग पर सुरक्षित रूप से सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए भी प्राणायाम एवं उच्च योगाभ्यासों के पूर्व षट्कर्म के अभ्यासों का उपयोग किया जाता है।[16]

'पंचकर्म' का उद्देश्य -

आयुर्वेदिक पंचकर्म चिकित्सा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगी के रोग को नष्ट करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। आयुर्वेद चिकित्सा शरीर को स्वस्थ रखने के सिद्धांतों का पालन करने और मनुष्य को रोगमुक्त बनाये रखने के उद्देश्य से एवं रोग-निवारण हेतु रोगी के शरीर को ऋतुचर्या के अनुसार शुद्ध करने की पूर्ण विधि है। रोगी के रोग का सम्पूर्ण निवारण हेतु पंचकर्म को महत्वपूर्ण चिकित्सा कर्म माना गया है।[17]

पित्त दोष -

पित्त - "तप सन्तापे"[18] अर्थात् दहन अथवा उष्ण करना। शरीर में अग्नि कर्म के कर्त्ता को पित्त कहते हैं अर्थात् जो शरीर में ऊष्मा या गर्मी व्याप्त करता है।

पित्त के स्थान -

स्वेदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्।।[19]

स्वेद/पसीना (Sweat) रस (plasma), लसीका (lymph), रक्त और आमाशय ये पित्त के स्थान हैं। इन सभी में आमाशय विशेष रूप से पित्त का स्थान है।

पित्त के कार्य -

दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णादेहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम्।।[20]

देखना, आहार पाचन, शरीर की प्राकृतिक उष्णता को व्यवस्थित रखना, भूख एवं प्यास की उत्पत्ति, शरीर की कोमलता को बनाए रखना, प्रभा (चमक), प्रसाद (मानसिक रूप से प्रसन्नता), मेधा (धारणात्मक शक्ति या बुद्धिमत्ता) आदि क्रियायें विकार रहित पित्त के कार्य हैं।

पित्त के क्षय होने के कारण -

स्नेह (चिकना), उष्ण (गर्म), तीक्ष्ण (तीखा) और द्रव्य (औषध द्रव्य), सर (गतिमान) गुणों के साथ-साथ अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन) और कटु (कड़वा) रसों वाले भोजन और पेय पदार्थों का सेवन करने से पित्त बढ़ता है और इसके विपरीत स्नेह रहित रुक्ष (सूखा), शीत (ठण्डा), मन्द (धीमा), सान्द्र (गाढ़ा) और स्थिर गुणों वाले खाद्य पदार्थों के सेवन के साथ-साथ मधुर (मीठा), तिक्त (कड़वा) और कषाय (कसैला) रसों वाले तरल पदार्थों के सेवन से पित्त की हानि होती है।

पित्त के क्षीण होने के लक्षण -

पित्त की कम क्रियात्मक गतिविधि के कारण शरीर की ऊष्मा (तापमान) में कमी आ जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर मे ठण्ड की अनुभूति होने लगती है। जठराग्नि धीमी हो जाती है, जिससे भोजन प्रभावी रूप से पच नहीं पाता और शरीर की चमक भी कम हो जाती है।

प्रकुपित पित्त के कर्म [21] - पित्त के बढ़ने पर शरीर में गर्मी, रक्तता और जलन का अनुभव होता है। इससे घाव आदि पक जाते हैं। पसीना आना, नमी, स्राव, थक्का जमना, अवसाद (थकावट), बेहोशी और मदिरा के नशे जैसे लक्षणों की वृद्धि हो जाती है। शरीर का रंग पीला और लाल के अतिरिक्त अन्य रंग में बदल जाता है और मुँह का स्वाद खट्टा या कड़वा हो जाता है। शरीर में बिना पित्त के बढ़ने से जलन नहीं होती। इसलिए पित्त प्रकुपित रोग ज्वलनशील होते हैं।

पित्त शमन के उपाय[22] **-**

(1) प्रकुपित पित्त को शांत करने के लिए मधुर और शीतल द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत पान करावे तथा मधुर और शीत गुण वाले द्रव्यों से विरेचन करावे। मधुर तिक्त कषाय गुण युक्त आहार तथा औषध का सेवन कराना लाभप्रद है।

(2) पित्त के शमन के लिए विरेचन कराना श्रेष्ठ होता है। अतः पित्त के विकारों को विरेचन द्वारा शमन करें। पित्त शमन के लिए घृत पथ्य है।

वारिसार धौति या शंखप्रक्षालन[23] -

वारि का अर्थ है जल, सार का अर्थ है तत्व और धौति का अर्थ है धोना, जो दर्शाता है कि जल तत्व को धोना या शुद्ध करना है। इस प्रक्रिया को कभी-कभी "काया-कल्प" भी कहा जाता है, क्योंकि इस प्रक्रिया में शरीर के आंतरिक अंगों के दूषित तत्वों को बाहर निकालकर शुद्ध शरीर का पुनर्निर्माण किया जाता है। इसका दूसरा नाम "शंख प्रक्षालन" है। वारिसार धौति का उद्देश्य पेट की अशुद्धियों को दूर करना है जो हमारे शरीर में मल का उत्पादन करने का कारण बनती हैं। इसमें गुदा-मार्ग और भोजन नली के मुख के बीच के क्षेत्र की सफाई शामिल है।

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिबेच्छनैः।
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः।।17।।
वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम।
साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते।।18।।

अर्थ - मुँह से धीरे-धीरे पानी पीते हुए गले तक पानी भर लें। फिर पेट को हिलाते हुए पानी को निचली नली अर्थात् गुदामार्ग से बाहर निकाल लेना है। इस अभ्यास से पहले रात को हल्का भोजन करना सबसे अच्छा है। उदाहरण के लिए, फल या खिचड़ी खाना बेहतर है। वारिसार धौती के दिन, सुबह चाय, नाश्ता या किसी भी अन्य प्रकार के भोजन से बचें। आपको सुबह के समय आसनों के अभ्यास करने से भी बचना चाहिए। इस क्रिया को करते समय लचीले, आरामदायक, हल्के कपड़े पहनने की सलाह दी जाती है।

इस प्रक्रिया में गुनगुने पानी में थोड़ा नमक मिलाना होता है और इसे किसी साफ, खुले स्थान जैसे आँगन या बरामदे में किया जाना चाहिए। इस विधि में पहले दो गिलास गर्म नमकीन पानी पीना है और उसके बाद लगातार पाँच आसन करना शामिल है। इस तरह, हर दो गिलास पानी के बाद आसनों को लगातार उस क्षण तक दोहराया जाता है जब तक मल त्याग की स्थिति न आ जाये। इस विधि में प्रयोग किये जाने वाले पाँच आसन - ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन, उदराकर्षण। पेट साफ होने के बाद शंख प्रक्षालन में दो और चरण आवश्यक हैं। (1) कुंजल क्रिया (2) नेति क्रिया। शंख प्रक्षालन की विधि इन दो क्रियाओं के बाद ही पूर्ण मानी जाती है।

समय - शंख प्रक्षालन के अभ्यास को बहुत ठण्ढे मौसम में तथा बहुत अधिक गर्मी होने पर नही करना चाहिए। इससे शरीर से बहुत पसीना निकलेगा। बादल होने पर भी यह अभ्यास न करें। आसमान एकदम खुला होना बहुत जरूरी है।

सावधानी - वारिसार क्रिया लम्बी है एवं हर कोई इसकी लम्बी प्रक्रिया से अवगत नहीं है। जब तक आपको किसी प्रमाणित शिक्षक से सीधा निर्देश न मिले, इस तकनीक में शामिल होने से बचें। अगर इसे गलत तरीके से किया जाए, तो फायदे की बजाय नुकसान हो सकता है। इसे खाली पेट करना सबसे अच्छा है क्योंकि पेट खाली होने पर पानी बाहर निकालना ज्यादा आसान होता है। अगर पेट भरा हुआ है और पाचन प्रक्रिया शुरू हो गई है तो पानी सही तरीके से बाहर नहीं निकलेगा और हानिकारक हो सकता है। इस कारण, खाली पेट रहना जरूरी है। यह अभ्यास उच्च रक्तचाप, चक्कर, मिर्गी, हृदय रोग, ग्रहणी संबंधी अल्सर, हर्निया या खूनी बवासीर से ग्रसित लोगों को नहीं करना चाहिए।

लाभ - वारिसार शरीर को शुद्ध करता है। शरीर को प्रदूषकों (मल) और रोगों से शुद्ध किया जाता है। इस क्रिया से देवताओं के समान दिव्य, तेजस्वी, जीवंत और प्रकाशवान शरीर की प्राप्ति होती है। इस तकनीक से शरीर को रोगमुक्त रखा जा सकता है।

विरेचन कर्म -

(1) विरेचन परिचय[24] **:-** विरेचन कर्म का उपयोग पित्त दोष और पित्त प्रधान विकारों की चिकित्सा के लिए किया जाता है। इसे पित्त प्रधान रोगों के लिए सबसे प्रभावी चिकित्सा माना जाता है।

विरेचन कर्म के माध्यम से शरीर की सफाई की जाती है और इस प्रक्रिया में शरीर में एकत्रित अपशिष्ट पदार्थों (मलों) और आँतों में उपस्थित दोषों या प्रदूषकों को औषध सेवन कराकर निचले मार्ग (गुदा) से बाहर निकाल देते हैं। वमन कर्म की तरह ही विरेचन कर्म भी स्नेहन और स्वेदन के बाद पूरा होता है।

विरेचन शब्द की व्युत्पत्ति – वि+रिच्+ णिच्।

ल्युट् - मलादेः निस्सरण।

वि उपसर्ग के साथ रिच् धातु में णिच् तथा ल्युट् प्रत्यय लगने से विरेचन शब्द उत्पन्न होता है।

विरेचन शब्द का अर्थ:- विरेचन शब्द का अर्थ है - मलों या अपशिष्ट पदार्थों का निष्कासन (बाहर निकालना)।

विशेष रूप से - अधोमार्ग (गुदामार्ग) से दोषों व मलों को बाहर निकालना।

चरक संहिता ग्रन्थानुसार विरेचन कर्म,

तत्र दोषहरणं अधोभागम् विरेचन संज्ञकम्।।[25]

जिस प्रक्रिया द्वारा अधोभाग अर्थात् गुदामार्ग से मल व दोष आदि को बाहर निकाला जाता है, विरेचन कहलाता है।

विरेचन कर्म की उपयोगिता एवं महत्व[26] **-**

विरेचन कर्म पित्त दोष व पित्त प्रधान रोगों की सर्वोत्तम चिकित्सा है।

(1) आचार्य चरक के अनुसार - विरेचन की उपयोगिता एवं महत्व को बताते हुए इसे महर्षि चरक ने मल नाशक, रोगहर, बलवर्धक, आयुवर्धक कहा है।

(2) आचार्य सुश्रुत के अनुसार - विरेचन कर्म बुद्धि का विकास करने, इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने, धातुओं को स्थिरता प्रदान करने एवं अग्निवर्धक या पाचन शक्ति बढ़ाने वाला है।

विरेचन कर्म निम्न प्रकार से उपयोगी माना गया है -

(3) वायु से मिश्रित, कफ संयुक्त व्याधियों एवं सभी मलों या अपशिष्ट पदार्थों का शुद्धिकरण करने में भी उपयोगी है।

(4) रक्त से उत्पन्न रोगों की प्रशंसनीय चिकित्सा में उपयोगी।

(5) बल में वृद्धि, रूपरंग में शुद्धता, बुद्धि एवं इन्द्रियों में प्रसन्नता, अग्निवर्धक एवं धातुओं में स्थिरता उत्पन्न करता है।

(6) वृद्धावस्था को नष्ट करने एवं रोगनिवारण में (ऋतुओं के अनुरूप शुद्धि) उपयोगी।

परिचर्चा -

(1) शंख प्रक्षालन के अभ्यास से इर्रिटेबल बाउल सिंड्रोम (IBS - पाचन तन्त्र सम्बन्धी विकार) के लक्षणों में सुधार देखा गया है। (सिंह एवं अन्य, १९८८)[27] नैदानिक शोथ में शंख प्रक्षालन को कोलोनोस्कोपी (बड़ी आँत और मलाशय की जाँच सम्बन्धी चिकित्सा प्रक्रिया) हेतु आँतों की सफाई के लिए एक प्रभावकारी प्रक्रिया माना गया है (आर्य एवं अन्य, २०१३)[28] । मालशे (२०१८) के अनुसार वारिसार धौति पित्ताशय में बनने वाले मल पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देती है, जिससे पित्ताशय में पथरियों को बनने से रोका जा सकता है। इसके अभ्यास से आँतों की सफाई के साथ आँतों के कृमियों का भी निष्कासन हो जाता है।[29]

(2) वारिसार धौति (लघु शंख प्रक्षालन) वारि़सार, जल़तत्व अर्थात जल द्वारा तत्व की सफाई। जल के द्वारा आन्तरिक अगों की सफाई करना।

विधि विधान के अनुसार गुनगुना पानी मुख से धीरे-धीरे पीते हुए कण्ठ तक भर लेना है। इसके बाद उदर को चलाकर अर्थात् ताड़ासन, तिर्यकताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन व उदाकर्षण आसन करके जल को अधोमार्ग या गुदामार्ग से निकाल देना है, इस अभ्यास को तीव्रता से करें और बार-बार शौच जाए, अगर शौच न आए तो पानी फिर पियें और आसन करें। इस क्रिया से सम्पूर्ण पाचन तन्त्र की सफाई होती है। यह वारिसार नामक धौति परम गोपनीय एवं शरीर को स्वस्थ करती है। इसका प्रयत्नपूर्वक साधन करने वाले योगियों को देवताओ के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

(3) पंचकर्म के अन्तर्गत शरीर के उर्ध्वभाग (कफ स्थान) का वमन से, मध्य भाग (पित्त स्थान) का विरेचन से एवं शरीर के अधोःभाग (वायु का स्थान) का वस्ति चिकित्सा से शोधन किया जाता है (निगम, 1999) । षट्कर्म द्वारा इन्हीं दोषों के निर्हरण के लिए दण्ड धौति, वमन धौति, वस्त्र धौति, कफ के लिए वारिसार धौति पित्त तथा वायु दोषों के लिए वस्ति (जल एवं स्थल) बताई गई है।

(4) विरेचन कर्म में दूषित और उत्तेजित पित्त जिसका प्राकृतिक निवास स्थान आमाशय है, को विरेचन की प्रक्रिया के माध्यम से निकटतम मार्ग यानी गुदा मार्ग से बाहर निकाल दिया जाता है।

निष्कर्ष -

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से यह कहा जा सकता है कि समस्त यौगिक ग्रन्थों - हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, उपनिषदों में वर्णित षट्कर्म क्रियाओं द्वारा शारीरिक एवं मानसिक विकारों का शुद्धिकरण करके उन्हें सन्तुलित अवस्था में लाया जा सकता है तथा षट्कर्म एवं पंचकर्म के माध्यम से त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) को सन्तुलित अवस्था में रखकर शरीर को रोग मुक्त रखकर दिर्घायु की प्राप्ति की जा सकती है। षट्कर्म एवं पंचकर्म के उपयोग से समस्त पित्त विकारों का समूल नाश होने के साथ-साथ शरीर में ऊर्जा, बल, रोग प्रतिरोधक क्षमता की भी वृद्धि होती है। इसलिए भौतिक शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म एवं पंचकर्म क्रियाओं का निरन्तर उपयोग अत्यन्त लाभकारी है।

सन्दर्भ सूची

1. शास्त्री, कविराज डॉ० अम्बिका दत्त ए. एम. एस., मेहता, प्राणजीवन माणेकचन्द, सुश्रुतसंहिता, सूत्र स्थानम, अध्याय - 15, श्लोक संख्या - 48, पृष्ठ संख्या - 64
2. च. सू. - 1/57
3. गुप्त, श्री अत्रिदेव कविराज, चरकसंहिता, 1948, भाग-1 (सूत्र-निदान-विमानात्मक), संस्करण- द्वितीय, अध्याय- प्रथम, श्लोक संख्या- 57, पृष्ठ संख्या- 14
4. शा. पू. - 5/24
5. शास्त्री, कविराज, डॉ० अम्बिका दत्त, ए. एम. एस., मेहता, प्राणजीवन माणेकचन्द - सुश्रुतसंहिता (सूत्र स्थानम); 1954, अध्याय - 21वाँ, श्लोक संख्या - 05, पृष्ठ संख्या- 87, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत, सीरीज, बनारस।
6. शास्त्री, कविराज, डॉ० अम्बिका दत्त, ए. एम. एस., मेहता, प्राणजीवन माणेकचन्द - सुश्रुतसंहिता (सूत्र स्थानम); 1954, अध्याय - 15वाँ, श्लोक संख्या - 03, पृष्ठ संख्या- 56, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत, सीरीज, बनारस।
7. च. सू. - 1/57
8. गुप्त, श्री अत्रिदेव कविराज, चरकसंहिता, 1948, भाग-1 (सूत्र-निदान-विमानात्मक), संस्करण- द्वितीय, अध्याय- प्रथम, श्लोक संख्या- 57, पृष्ठ संख्या- 14
9. शा. पू. - 5/24
10. शास्त्री, कविराज डॉ० अम्बिका दत्त ए.एम.एस., मेहता, प्राणजीवन माणेकचन्द, सुश्रुतसंहिता, सूत्र स्थानम्, 1954, अध्याय- 21वाँ, श्लोक संख्या-03, पृष्ठ संख्या- 86
11. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द - घेरण्ड संहिता; बिहार योग भारती द्वारा संस्करण 2011, अध्याय -1 (षट्कर्म प्रकरण), श्लोक संख्या - 12, पृष्ठ संख्या - 23; योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, मुंगेर, बिहार, भारत।

12. शारंगधर संहिता (उत्तर खण्ड) - 8/63
13. सुश्रुत संहिता - सूत्र स्थान (डलहण टीका) - 5/3
14. शर्मा, प्रोफेसर अजय कुमार - कायचिकित्सा (चतुर्थ भाग), संस्करण - 2014, अध्याय - 1, पृष्ठ संख्या - 1, 2, 9, 10, 11, 12; चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी।
15. शुक्ल, डॉ० विद्याधर, कायचिकित्सा (चतुर्थ भाग), पुनर्मुद्रित संस्करण 2010, अध्याय - 1 (विषय प्रवेश विज्ञान), पृष्ठ संख्या - 10
16. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द - आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध; चतुर्थ संशोधित संस्करण 2015, अध्याय -8 (षट्कर्म), पृष्ठ संख्या - 524, 525; योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
17. शर्मा, प्रोफेसर अजय कुमार - कायचिकित्सा (चतुर्थ भाग); संस्करण - 2014, अध्याय - 1 (कायचिकित्सा: पंचकर्म), पृष्ठ संख्या - 4; चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी।
18. शास्त्री, कविराज, डॉ० अम्बिका दत्त, ए. एम. एस., मेहता, प्राणजीवन माणेकचन्द - सुश्रुतसंहिता (सूत्र स्थानम); 1954, अध्याय - 21वाँ, श्लोक संख्या - 05, पृष्ठ संख्या- 87, जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत, सीरीज, बनारस।
19. अत्रिदेव कविराज, चरकसंहिता, 1948, भाग-1 (सूत्र-निदान-विमानात्मक), संस्करण- द्वितीय, अध्याय- 20 (सूत्रस्थानम्), श्लोक संख्या- 08, पृष्ठ संख्या-238
20. अत्रिदेव कविराज, चरकसंहिता, 1948, भाग-1 (सूत्र-निदान-विमानात्मक), संस्करण- द्वितीय, अध्याय- 18 (सूत्रस्थानम्), श्लोक संख्या- 53, पृष्ठ संख्या-229
21. आचार्य बालकृष्ण, आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, 2013, अध्याय-02, पृष्ठ संख्या-29
22. आचार्य बालकृष्ण, आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य, 2013, अध्याय-02, पृष्ठ संख्या-29
23. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, घेरण्ड संहिता, 2011, अध्याय - 1 (षट्कर्म प्रकरण), श्लोक संख्या - 17, 18, पृष्ठ संख्या - 33-44
24. शर्मा, प्रो. राधेश्याम, मंगल, डॉ. गोपेश, गर्ग, डॉ. गुन्जन, आयुर्वेदीय पंचकर्म चिकित्सा विज्ञान, 2020, द्वितीय संस्करण, अध्याय -5 (विरेचन कर्म), पृष्ठ संख्या - 158-159
25. चरक संहिता कल्प स्थान - 1/4
26. शर्मा, प्रोफेसर अजय कुमार, कायचिकित्सा (चतुर्थ भाग), संस्करण - 2014, अध्याय - 5 (विरेचन कर्म), पृष्ठ संख्या - 134-136
27. Singh, S. N., Jaiswal, V., & Maurya, S. P. (1988). Shankha Prakshalana (gastrointestinal lavage) in health and diseases. Ancient Science of Life, VII (3 & 4), 157-163.
28. Arya, V., Gupta. K. A., Valluri, A., Arya, S. V., & Lesser, M. 1. (2013). Rapid colonoscopy preparation using bolus lukewarm saline conhined with sequential posture changes: A randomized controlled trial. Digestive Diseases and Sciences, 58(8), 2156-2166. https://doi.org/10.1007/s10620-013-2598-9
29. Malshe, P. C. (2018). Medical Understanding of Yoga. Jaypee Brothers Medical Publishers.
30. Santosh Rani (2020),^^'kjhj 'kqf) ,oa "kVdeZ^^] RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary, Volume 05, Issue-0.3, March 2020, ISSN: 2455-3085, www.rjournals.com (Peer Reviewed Journal), p.137-145
31. निगम, उमाशंकर (1999) क्लीनिकल पंचकर्म । उज्जैन स्टडी पैलेस, पृ. 18
32. सुनील कुमार एवं विनोद उपाध्याय (2012),"आयुर्वेदिक पंचकर्म एवं यौगिक षट्कर्म की तुलनात्मक समीक्षा", DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal ¼2012½] 01] 06&11
33. Nimmy VS, Praveen Kumar KS. A Conceptual Appraisal of Virechana Karma. AYUSHDHARA, 2018;5(2):1664-1668.